गुरु-शिष्य संबंध – आधुनिक शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में

*शोभारानी सभ्रवाल**

प्राचीन काल से ही भारत वर्ष में शैक्षिक प्रक्रियाओं में गुरु शिष्य संबंधों को महत्त्व दिया जाता रहा है परंतु - वर्तमान समय में इन संबंधों में परिवर्तन आ रहा है और ये संबंध कमज़ोर पड़ते दिखाई दे रहे हैं। आज की शिक्षा व्यवस्था में यदि हम गुरु-शिष्य संबंधों में सुधार चाहते हैं तो हमें गुरु तथा शिष्य दोनों की मनोदशाओं का अध्ययन करना होगा तथा उनसे जुड़ी संवेगात्मक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक या व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न करने होंगे।

भारतवर्ष की प्राचीनता, दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता को अखिल विश्व के समृद्ध राष्ट्र भी निस्संकोच होकर स्वीकार करते हैं। इस देश की संस्कृति, भाषा को अनेक भाषाओं की जननी कहा जाता है। विदेशों में आज भी भारतवर्ष की छवि आध्यात्मिक गुरु के रूप में स्वीकार की जाती है। भारतीय संस्कृति में 'गुरु' की महत्ता तथा आवश्यकता के संबंध में जितना उल्लेख किया गया है उतना अन्य किसी देश के साहित्य तथा संस्कृति में नहीं मिलता।

माता-पिता के पश्चात् गुरु की मान्यता को वेद, उपनिषद तथा परवर्ती साहित्य में एक मत से स्वीकार किया गया है। गुरु के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त करने के लिए तथा उनका गुणगान करने के लिए 'गुरु पूर्णिमा' 'व्यास पूजा' आदि विभिन्न नाम देकर विशेष दिवस भी निर्धारित किए गए हैं। गुरु पूजा की यह प्रथा केवल भारत तक ही सीमित नहीं है अपितु भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित थाइलैण्ड, मॉरिशस जैसे देशों में भी इसका प्रचलन है।

गुरु

गुरु शब्द 'गु' का अर्थ अंधकार तथा 'रु' का अर्थ है रोकने वाला। अन्धकार को रोकने अर्थात दूर करने से ही गुरु शब्द निर्मित हुआ है।

'अद्वयतारकोपनिषद'[1] में गुरु शब्द के अर्थ को इस प्रकार व्यक्त किया गया है - वेदादि से

*प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, पैसल वीड कॉलेज, देहरादून.

[1]अद्वयतारकोपनिषद् - श्लोक - 14.16.

संपन्न आचार्य, विष्णु भक्त, मत्सरतारहित योग्य ज्ञाता, योग निष्ठा वाला, योग्यात्मा, पवित्र, गुरु भक्त, परमात्मा में विशेष रूप से लीन इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति ही गुरु कहा जाता है अर्थात गुरु शब्द में सर्वगुण संपन्नता व्याप्त है। गुरु में गुरुता, महत्त्व, पवित्र आत्मा, असाधारण योग्यता सभी कुछ दृष्टव्य होता है। 'कादम्बरी'[2] में गुरु के गुणों का वर्णन किया गया है। ऋषि जाबाल के गुणों का उल्लेख इस प्रकार किया है "यह मुनि तेजों में अग्रणी, करुण रस का प्रवाह, संसार रूपी समुद्र से पार जाने के लिए कुल्हाड़ी, संतोष का सागर, सिद्धि मार्ग में शिक्षक, अशुभ ग्रहों को शांतकर्त्ता, प्रजा का चक्र, धर्म की ध्वजा, आसक्ति रूपी पल्लवों के लिए दावानल, क्रोध रहित, नर्क द्वारों के बंधन, शक्ति के आश्रय अभिमान रहित तथा सुखों से परागमुख हैं।" मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र हो उसमें स्वामित्व प्राप्त करने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति की खोज करनी पड़ती है जो इस क्षेत्र में पूर्ण ज्ञान रखता हो। यह पूर्ण ज्ञानी केवल गुरु होता है। गुरु ही साधारण व्यक्तियों को अज्ञानान्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है।

शिष्य

'शिष्यस्तेऽहं शधि मां त्वां प्रपन्नम्।'[3]

अर्थात मैं आपका शिष्य हूँ अत: आपकी शरण में आए हुए मुझको शिक्षा दीजिए। वास्तव में जो पूर्णतया गुरु की शरण में समर्पित हो जाए वह शिष्य है। 'सत्यार्थ-प्रकाश' में शिष्य वही है जो सत्य, शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा रखने वाला तथा आचार्य का प्रिय होता है।[4]

शिष्य शब्द अपने में पूर्ण है जो वास्तविक रूप से गुरु शिष्य संबंध को उद्घाटित करता है। जो शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन करके उनके आशीर्वादात्मक वाणी को ग्रहण करता हुआ उनके हृदय में समाविष्ट हो जाता है वही सच्चा शिष्य है। 'नारद पुराण' में शिष्य की तल्लीनता के विषय में कहा गया है कि - ''जो विद्या की चाहना रखने वाला है और विद्या प्राप्त करना ही जिसके जीवन का एकमात्र प्रयोजन होता है वह एक गरुड़ पक्षी हंस के समान समुद्र में भी चला जाता है''।[5] तात्पर्य यही है कि विद्या का अर्थी सुदूर और दुर्गम स्थानों में भी पहुँच जाता है क्योंकि उसका तो एकमात्र लक्ष्य विद्या की प्राप्ति करना ही होता है। जो विद्यार्थी अपना रहन-सहन सीधा-सादा और सदाचारपूर्ण रखता है वही विद्या की प्राप्ति करता है।

''भारतीय ज्ञान साधना के क्षेत्र में ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान और शब्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्ञाता होता है - गुरु एवं शिष्य, ज्ञेय ब्रह्म तथा ज्ञान को प्राप्त कराने का साधन है।[6] स्वामी दयानन्द भी दार्शनिक थे। उनका मत है कि ज्ञाता के अतिरिक्त ज्ञेय का

2#कादम्बरी पृ. भाग जाबालिवर्णनम् पृ. 166 से 168.

3भगवद्गीता - शंकारमाण्य 217, पृ. 83.

4महर्षि दयानन्द सरस्वती - सत्यार्थ प्रकाश- पृ. 564.

5नारदपुराण द्वितीय खण्ड - श्लोक - 230, पृ. 255.

6डॉ वेद प्रकाश ग्रुप - दयानन्द दर्शन - पृ. 217.

भी पृथक अस्तित्व है अन्यथा ज्ञान किसका? गुरु का ज्ञान बिना शिष्य के अस्तित्व के सुरक्षित तथा हस्तांतरित नहीं हो सकता अर्थात गुरु शब्द के साथ-साथ शिष्य शब्द स्वत: ही आ जाता है।

गुरु शिष्य संबंध

वैदिक ग्रन्थों, महाकाव्यों, नाटकों, नीतिकाव्यों तथा हमारे साहित्य आदि में गुरु शिष्य परंपरा का उल्लेख मिलता है। संस्कृत के शब्दकोष कल्पदद्रुम[7] के द्वारा शिष्य की उत्पत्ति इस प्रकार की गयी है। शास् + क्यप्। शास् शब्द क्यप् प्रत्यय मिलकर शिष्य शब्द की उत्पत्ति मानी गयी है। शास् का अर्थ होता है — शासन करना, आज्ञा देना, आशीर्वाद देना, उपदेश देना, समादिष्ट करना आदि। उपरोक्त सभी प्रक्रियाएँ गुरु द्वारा शिष्य के प्रति की जाती हैं। हमारी भारतीय वैदिक संस्कृति के अनुसार गुरु पिता/माता तुल्य तथा शिष्य पुत्र/पुत्री तुल्य व्यवहार करता है।

गुरु शिष्य संबंध — आधुनिक परिप्रेक्ष्य में (चिंतन)

आज की आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में यदि हम गुरु-शिष्य संबंधों का विश्लेषण करें तो इसकी छवि कुछ विकृत दिखायी देती है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आकर आधुनिक बनने की होड़ में युवा वर्ग अपने गुरुजनों तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति की आज्ञा का उल्लंघन और उनकी उपेक्षा करने में गौरव का अनुभव करते हैं। युवा वर्ग में जो निराशा, भग्नाशा, अवहेलना, कर्त्तव्य की उपेक्षा, अहंकार आदि दृष्टिगोचर होते हैं वास्तव में ये सभी अवगुण हमारी भारतीय संस्कृति के अनुरूप कदापि नहीं हैं। अन्य देशों की संस्कृतियों के मिश्रण से, विदेशों में कुछ काल रहने तथा पुन: अपने देश लौटने से लोकतंत्रीय भारत में स्वाधीनता का अर्थ ठीक न समझने से तथा प्रत्येक संस्थान, संस्था और व्यक्ति में राजनीति का प्रवेश हो जाने से आज भारतीय युवावर्ग किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा बन गया है। वह पथभ्रष्ट होकर ज्ञान शून्य, निर्देशन रहित तथा अंधकार में विलीन हो रहा है। प्रत्येक शिष्य में प्रेम, त्याग, सेवा, अहंकार शून्यता आदि गुणों का होना आवश्यक है जो आज के शिष्य में नहीं है।

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक भी अपने कर्त्तव्य से विमुख होते दिखते हैं। वह भी कई बार अपने को इस आधुनिक समाज की भागती ज़िंदगी का एक हिस्सा बनाने में लगे हैं। आज का शिक्षक अत्याधुनिक जीवन शैली में कदम से कदम मिलाकर चलने की आपाधापी में वह भी किसी हद तक किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा हो गया है। कई बार समाचारपत्रों तथा मीडिया द्वारा सुनने को मिलता है कि कई बार शिष्यों द्वारा तथा कई बार शिक्षकों द्वारा अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का हनन किया गया। इस पर हम सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि हमारी आज की शिक्षा व्यवस्था में गुरु शिष्य संबंधों में परिवर्तन क्यों आ रहे हैं। इसके लिए हमें गुरु तथा शिष्य दोनों की समस्याओं, मानसिक मनोदशाओं का अध्ययन करना ज़रूरी हो जाता

[7]शब्दकोष, कल्पदद्रुम तथा संस्कृत हिंदी कोष.

है। आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में गुरु शिष्य संबंधों के ज्वलंतशील विषय के रूप में सामने आने लगा है। इसके विषय में हमको थोड़ा संवेदनशील होने की आवश्यकता है।

सुझाव

संत वाणी संग्रह में गुरु शिष्य संबंधों को इस प्रकार दर्शाया गया है - 'प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी सहारे की आवश्यकता पड़ती है। वह किसी अनुभवयुक्त ज्ञानी व्यक्ति की अँगुली पकड़कर अपना मार्ग तय करना चाहता है। इस संसार में सर्प को दूध पिलाने वाले तो बहुत हैं लेकिन उनके विष को स्वयं दूर करने वाले अति अल्प ही दिखाई देते हैं। वह सिर्फ गुरु ही होता है।[8]

आज की अति आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में यदि हम गुरु शिष्य संबंधों में सुधार चाहते हैं तो हमें निम्न पहलुओं की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करना होगा। हमें गुरु तथा शिष्य दोनों की मनोदशाओं का अध्ययन करना होगा।

छात्रों से संबंधित

छात्रों की समस्याओं से संबंधित प्रत्येक विद्यालय में उचित 'निर्देशन एवं परामर्श' प्रोग्राम रखा जाए ताकि उनकी कुछ संवेगात्मक या सामाजिक या पारिवारिक समस्याओं को समझकर हल करने की कोशिश की जाए।

- माता-पिता तथा शिक्षकों को एक माह में कम से कम एक या दो बार बच्चे से संबंधित समस्याओं पर विचार-विमर्श करना चाहिए जिससे बालक की शैक्षिक, संवेगात्मक, पारिवारिक या व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान हो सके।
- माता-पिता द्वारा बच्चों पर अपनी अति महत्त्वाकांक्षाओं का बोझ लादना भी बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य तथा उनके अनुशासन को प्रभावित करता है। कभी-कभी बच्चा इस महत्त्वाकांक्षा में दब जाता है तथा उद्दंड हो जाता है। इसके लिए समय-समय पर ऐसे सेमिनारों का आयोजन किया जाए जिसमें माता-पिता तथा शिक्षक समान रूप से भाग ले सकें।
- कक्षाओं में वैयक्तिक भेदों का ध्यान रखकर शैक्षिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

शिक्षक के संबंध में

- दास. एम. जे. (1989) ने शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य पर काम कर पाया — कि शिक्षकों पर काफी काम का बोझ था तथा उनके अपने अधिकारियों के साथ संबंध अच्छे नहीं थे। उन्होंने सुझाव दिया कि शिक्षकों को काम में खुशी तथा पुरस्कार उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है।[9]
- अध्यापक को विशेष योग्यतायुक्त होने के लिए प्रशिक्षित होना चाहिए इसके लिए उसे

[8]कबीरदास - सन्तवाणी संग्रह - 25/41.

[9]फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च - पृ. 114.

अनेक पूर्वाग्रहों से मुक्त होना पड़ेगा और स्वतन्त्र चिंतन करना होगा। छात्रों को मान्य मन से विपरीत मत प्रकट करने की छूट देना अध्यापक का कर्त्तव्य है किंतु चंद अध्यापक ही ऐसा करते हैं। फल यह होता है कि छात्रों में स्वतंत्र मत रखने और शोध की प्रवृत्ति जाग्रत होने के बजाय केवल पुराणपंथीपन ही आ पाता है।[10]

- शिक्षा प्रशासन में अध्यापक की भूमिका की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। शिक्षा-तंत्र इसलिए आयोजित है ताकि छात्र-अध्ययन कर सकें और अध्ययन-अध्यापन में कुशल शिक्षक का बड़ा महत्त्व है परंतु भारी-भरकम शिक्षा-तंत्र की यह बहुत बड़ी कमी है कि उसके अधिकतर शिक्षा-प्रशासक अध्यापक नहीं होते अत: उन्हें बालकों के अध्यापन का अनुभव नहीं होता।[11]

शिक्षकों की आर्थिक समस्याओं पर सरकार द्वारा विशेष ध्यान दिया जाए जिससे वे मुक्त रूप से अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन कर सकें।

- वर्तमान में शिक्षकों को कक्षा में हर दृष्टि से सजग रहने की एवं प्रबुद्ध और जानकारी विशेषज्ञ के रूप में अपने को प्रस्तुत करने की सामर्थ्य अपने अंदर पैदा करनी होगी। इस सामर्थ्य के कारण ही वह एक विश्वसनीय संदर्भदाता, मार्गदर्शक और परामर्शी की भूमिका निर्वहन कर सकता है।[12]
- शिक्षक को छात्रों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए।
- शिक्षक की मानसिक-दशा तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए समय-समय पर शैक्षिक प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा सेमिनारों की व्यवस्था की जाए जिसमें शिक्षक उन्हें समस्याओं के बारे में अवगत करा सकें तथा इन समस्याओं के समाधान की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- उपरोक्त सभी सुझावों के साथ हमें नैतिक-शिक्षा को विशेष महत्त्व देना होगा। समय-समय पर ऐसी नैतिक शिक्षा से संबंधित सेमिनारों का आयोजन किया जाए जिसमें छात्र-शिक्षक तथा विशेषज्ञ सम्मिलित हो जिससे गुरु शिष्य संबंधों में सुधार हो सके।
- यदि हम गुरु शिष्य संबंधों में प्यार तथा सम्मान का भाव चाहते हैं तो हमें नैतिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना होगा जिससे हमारा युवावर्ग आगे चलकर हमारे देश के लिए गौरव की मिसाल बन सके।
- वट्रेण्ड रसेल के अनुसार - 'शिक्षक को राष्ट्र तथा चर्च की अपेक्षा अपने शिष्य के प्रति प्रेम होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो वह आदर्श शिक्षक नहीं है।[13]

'कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं।'[14]

---

[10]वट्रेण्ड रसेल : शिक्षा और समाज व्यवस्था, राजकमल प्रकाशन - 1968, पृ. 116.

[11]वट्रेण्ड रसेल: शिक्षा और समाज व्यवस्था, राजकमल प्रकाशन - 1968, पृ. 166.

[12]शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श - महावीर प्रसाद गुप्ता, पृ. 30.

[13]वट्रेण्ड रसेल - शिक्षा की रूपरेखा - राजकमल प्रकाशन -1963, पृ. 42.

[14]कबीरदास - सन्तवाणी संग्रह - 44/101.